सम्राट अकबर और जैन धर्म

भारतीय इतिहास में धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव के प्रतिष्ठापकों में जिन सम्राटों का उल्लेख मिलता है उनमें सम्राट अशोक एवं हर्ष के बाद सम्राट अकबर का नाम आता है। भारतीय मुस्लिम शासकों में जो सामान्यतया धार्मिक दृष्टि से कट्टरतावादी रहे हैं, अकबर ही एक मात्र ऐसा व्यक्तित्व है, जो सिद्धान्त एवं व्यवहार दोनों ही दृष्टियों से अपेक्षाकृत रूप में धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव का समर्थक रहा है, चाहे यह उसने अपने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु ही किया हो। यह सत्य है कि वह अन्य धर्म व परम्पराओं के आचार्य, सन्तों और विद्वानों को अपने दरबार में सम्मानपूर्वक स्थान देता था। अकबर की धार्मिक उदारतावादी दृष्टि के परिणामस्वरूप अनेक कट्टर मुस्लिम उलेमा भी उसके आलोचक एवं विरोधी रहे हैं, फिर भी अकबर ने उनकी परवाह न करके अपने प्रशासन में अन्य धर्म-परम्परा के लोगों को समुचित स्थान दिया और उनकी भावनाओं को समझने का प्रयत्न किया।

अकबर में धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव की दृष्टि किन कारणों से विकसित हुई, यह विवाद का विषय है? इस सम्बन्ध में इतिहासकारों एवं समालोचकों के मन्तव्य अलग-अलग हैं। कुछ यह मानते हैं कि अकबर ने अपनी नीतियों में जिस धार्मिक उदारता का परिचय दिया उसका कारण उसकी राजनैतिक महत्त्वाकांक्षा ही थी। वह अपने प्रशासन में जिस अमन व शान्ति की अपेक्षा रखता था, वह धार्मिक कट्टरता में सम्भव न होकर धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव के द्वारा ही सम्भव थी। अपनी इस उदारवादी दृष्टि के आधार पर वह भारतीय जन-मानस को विशेष रूप से हिन्दू जन-मानस को प्रभावित करना चाहता था और यह दिखाना चाहता कि वह एक मुस्लिम शासक होकर भी हिन्दुओं का हितचिन्तक है। अत: विचारक यह मानते हैं कि उसकी यह धार्मिक सद्भाव व सहिष्णुता की नीति वस्तुत: उसकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा का ही परिणाम है, क्योंकि अपने प्रशासन के प्रारम्भ और अन्त में वह एक कट्टर मुस्लिम शासक के रूप में हमारे सामने आता है, जबकि उसका मध्यकाल धार्मिक उदारता का परिचायक है। इससे यह फलित होता है कि अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति उसकी प्रशासनिक आवश्यकता थी, क्योंकि यदि स्वभावत: इन सिद्धान्तों में उसकी आस्था होती तो जिस जजिया कर को उसने समाप्त किया था, उसे ही अपने सुस्थापित होने बाद पुन: लागू नहीं करता।

दूसरा दृष्टिकोण यह भी है कि अकबर वस्तुत: एक उदार दृष्टिकोणसम्पन्न व्यक्ति था, क्योंकि उसने अपने जीवन के आधार पर यह पाया था कि हिन्दू एवं मुस्लिम दोनों ही धर्मों के कट्टरतावादी लोग वस्तुत: जन-मानस को गुमराह करते हैं और सामाजिक शान्ति को भंग करते हैं। फतेहपुर सीकरी में बनाए गए इबादतख़ाने में ये धार्मिक लोग किस प्रकार से अपने स्थान आदि को लेकर आपस में लड़ते थे, इस सबको देखकर सम्भव है उसे धर्मान्धता से वितृष्णा उत्पन्न हो गयी हो और उसने धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव की दिशा में अपने प्रयत्न प्रारम्भ किये हों। जीवन के अन्तिम काल में उसमें जो कुछ धार्मिक कट्टरता के लक्षण प्रतीत होते हैं, उनका कारण यह है कि जीवन की अन्तिम अवस्था में परलोक के भय के कारण धर्म के प्रति एक विशेष लगाव उत्पन्न हो जाता है। अन्तिम काल में उसकी धार्मिक कट्टरता सम्भवत: इसी का परिणाम थी।

उसके मन में जो धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव विकसित हुआ उसका कारण क्या था, इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कुछ विद्वानों ने यह भी माना है कि वह जैन आचार्यों के प्रभाव के परिणामस्वरूप हुआ था। जैन धर्म अपने प्रारम्भिक काल से ही अनेकान्तवाद का समर्थक रहा है और उसका सिद्धान्त धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव का समर्थक है। यह तो स्पष्ट है कि अकबर हीरविजय, समयसुन्दर, विजयसेन, भानुचन्द्र आदि अनेक जैन आचार्यों और मुनियों के सम्पर्क में रहा है। जैन धर्म में धार्मिक सहिष्णुता व सद्भाव का विकास जो अनेकान्त के सिद्धान्त पर हुआ है उसकी समस्त चर्चा तो यहाँ सम्भव नही है, किन्तु उसके आधार पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि अकबर के जीवन में धार्मिक सहिष्णुता व सद्भाव के एवं पशुवध और मांसाहार को कम करने सम्बन्धी जिस दृष्टिकोण का विकास हुआ, वह आचार्यों के सम्पर्क का ही परिणाम था।

अकबर से जिन जैन आचार्यों का विशेष रूप से सम्बन्ध रहा है उनमें हीरविजय सूरि, विजयसेन सूरि, भानुचन्द्र उपाध्याय, उपाध्याय शान्तिचन्द्र, उपाध्याय समयसुन्दर, उपाध्याय सिद्धिचंद्र, जिनचंद्रसूरि, नन्दविजय, जयसोम, महोपाध्याय साधुकीर्ति आदि मुख्य हैं। अत: अकबर में पशु-वध, मांसाहार-निषेध तथा धार्मिक सहिष्णुता की जो प्रवृत्ति देखी जाती है उसका एक कारण उस पर इन जैन सन्तों का प्रभाव भी है। अकबर ने जैन सन्तों को जो फ़रमान प्रदान किये थे, उनसे भी इन तथ्यों की पुष्टि होती है। अकबर के द्वारा जैन आचार्यों के जारी फ़रमानों में मुख्य फ़रमान और उनकी विषयवस्तु निम्नलिखित है-

आचार्य हीरविजय सूरि को अकबर द्वारा प्रदत्त प्रथम फ़रमान में यह निर्देश है कि पर्युषण के १२ दिनों में उन क्षेत्रों में जहाँ जैन जाति निवास करती है, कोई भी जीव न मारा जाय। मिति ७ जमादुलसानी, हिजरी, सन् ९९२। (देखें-नीना जैन, मुगल सम्राटों की धार्मिक नीति, पृ०१६१-१६२)

दूसरा फ़रमान भी हीरविजय सूरि को दिया गया। इसमें सिद्धाचल (शत्रुंजय), गिरिनार, तारंगा, केशरियाजी, आबू (सभी गुजरात), राजगिरि, सम्मेद शिखर आदि जैन तीर्थ-क्षेत्रों में पहाड़ों पर तथा मन्दिर के आस-पास कोई भी जीव न मारा जाय। इस उल्लेख के साथ यह भी कहा गया है कि यद्यपि पशु-हिंसा का निषेध इस्लाम के विरुद्ध लगता है, फिर भी परमेश्वर को पहचानने वाले मनुष्यों का कायदा है कि किसी के धर्म में दखल न दें। ये अर्ज मेरी नज़र में दुरुस्त मालूम

पड़ी। तारीख ७ माह उरदी बेहेस्त मुताबिक रविउल अवल वही, सन् ३७ जुलुसी। यह इलाही संवत् ३५ मुताबिक २८वीं मुहर्रम, सन् ९९९ हिज़री का है। (देखें-वही, पृ०१६३-१६४)

हीरविजय को दिये गए तीसरे फ़रमान में विशेष रूप से धार्मिक सहिष्णुता एवं सद्भाव की बात कही गयी है। (वही, पृ०१६५-१६६)

चौथा फ़रमान अकबर द्वारा विजयसेन सूरि को प्रदान किया गया था। ये हीरविजय के शिष्य थे। इस फ़रमान में यह लिखा है कि हर महीने में कुछ दिन गाय, बैल, भैंस आदि को नहीं खाना और उसे उचित एवं फ़र्ज मानना तथा पक्षियों को न मारना तथा उन्हें पिजड़े में कैद न करना। जैन मंदिरों एवं उपाश्रयों पर कोई कब्जा न करे तथा जीर्ण मन्दिरों को बनवाने पर उन्हें कोई भी व्यक्ति न रोके। इस तरह यह भी निर्देश है कि वर्षा आदि होना या न होना ईश्वर के अधीन है, इसका दोष जैन साधुओं पर देना मूर्खता है। जैनों को अपने धर्म के अनुसार अपनी धार्मिक क्रियाएं करने देना चाहिए। तारीख, शहर्युर, महीना इलाही, सन् ४६ मुताबिक तारीख २५ महीना सफन, हिज़री सन् १०१०। (वही, पृ०१६७-१६८)

अकबर का पाँचवाँ फ़रमान जिनचन्द्र सूरि को दिया गया है। आचार्य जिनचन्द्र सूरि ने 'पर्युषण के बारह दिनों में हिंसा न हो', ऐसा आदेश प्राप्त किया था। उसमें पूर्व बारह दिनों के अतिरिक्त आषाढ़ शुक्ल की नवमीं से पूर्णमासी तक भी किसी जीव की हिंसा नहीं की जाय, ऐसा निर्देश है-तारीख ३१ खुरदाद इलाही, सन् ४९ (वही, पृ०१७१)

अकबर द्वारा जैन साधुओं का सम्मान करने तथा उन्हें फ़रमान देने की जो परम्परा प्रारम्भ हुई थी, उसकी विशेषता यह थी कि उसकी अगली पीढ़ी में भी न केवल साधुओं को उनके दरबार में स्थान मिला अपितु उन्हें शहजादों की शिक्षा का दायित्व भी दिया गया। अकबर के पश्चात् जहाँगीर एवं शाहजहाँ ने भी इसी प्रकार के अमारी अर्थात् पशु-हिंसा-निषेध के फ़रमान दिये। अकबर के मन में मांसाहार एवं पशुहिंसा-निषेध के लिए जो विचार विकसित हुए थे, उनके पीछे इन जैनाचार्यों का प्रभाव रहा है, इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता।

अकबर में जो धार्मिक सहिष्णुता व सद्भाव की भावना का विकास हुआ उसका एक कारण यह भी था कि उसने स्वयं अपनी अनुभूति के आधार पर यह जान लिया था कि कोई भी धर्म पूर्ण नहीं है और चरमसत्य को जान लेना मानव के वश की बात नहीं। फतेहपुर सीकरी के इबादतख़ाने में वह विभिन्न धर्मो के विद्वान् आचार्यों की बातें सुनता था और अन्य धर्मों के प्रति की गयी उनकी समालोचना पर ध्यान भी देता था, इससे उसे यह ज्ञान हो गया था कि कोई भी धर्म पूर्ण नहीं है। किसी भी धर्म-परम्परा द्वारा अपनी पूर्णता का एवं अपने को एकमात्र सत्य होने का दावा करना निरर्थक है। यह वही दृष्टि थी जो कि अनेकान्त की तत्त्व विचारणा में जैन-आचार्यों ने प्रस्तुत की थी और जिसे उन्होंने दर्शन परम्परा का आधार बनाया था। चाहे अकबर में यह उदार या अनेकान्तिक दृष्टि जैन आचार्यों के प्रभाव से आयी हो या धर्माचार्यों के पारस्परिक वाद-विवाद और समीक्षा के कारण, जिनका सम्राट स्वयं साक्षी होता था, किन्तु यह निश्चित है कि उसकी जो भी अनुभूति थी, वह जैन दर्शन के अनेकान्त सिद्धान्त के अनुकूल थी। यह भी निश्चय है कि आचार्यों ने उसकी इस अनुभूति को अपने अनेकान्त सिद्धान्त के अनुकूल बताकर उसे पुष्ट किया होगा और परिणामस्वरूप अकबर पर उनकी इस उदार-वृत्ति का प्रभाव हुआ होगा।

अकबर पर जैन साधुओं का प्रभाव इसलिये भी अधिक पड़ा क्योंकि वे नि:स्पृह और अपरिग्रही थे, उन्होंने राजा से अपनी सुख-सुविधा के लिए कभी कुछ नहीं माँगा, जब भी बादशाह ने उनसे कुछ माँगने की बात कही तो उन्होंने सदैव ही सभी धर्मों के अनुयायियों के संरक्षण तथा पशु-हिंसा व मांसाहार के निषेध के फ़रमान ही माँगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अकबर, जहाँगीर एवं शाहजहाँ तक मुग़ल-सम्राटों की जो उदार नीति रही है उसके मूल में इनके दरबारों में उपस्थित और इन सम्राटों के द्वारा आदृत जैन आचार्यों का भी महत्त्वपूर्ण हाथ है।

हमें यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि जैनाचार्यों के प्रभाव के अतिरिक्त ऐसे अन्य तथ्य भी थे जिनका प्रभाव अकबर की उदारवादी नीति पर रहा होगा। अकबर की धार्मिक उदारता का एक कारण यह भी था कि उसके पिता को और स्वयं उसे भी अपनी सत्ता के लिए हिन्दुओं की अपेक्षा मुस्लिमों से ही अधिक संघर्ष करना पड़ा था और अकबर ने यह समझ लिया था कि भारत पर शासन करने में उसके मुख्य प्रतिस्पर्धी हिन्दू न होकर मुसलमान ही हैं। दूसरे यह कि उसने हिन्दुओं पर शासन करने हेतु उनका सहयोग प्राप्त करना आवश्यक समझा था। इस प्रकार राजनैतिक परिस्थितियों ने भी उसे धार्मिक उदारता की नीति स्वीकार करने हेतु विवश किया था।

अन्त में, जैसा कि स्पष्ट है, अकबर में धार्मिक उदारता का एक क्रमिक विकास देखा जा सकता है। प्रारम्भ में वह एक निष्ठावान मुसलमान ही रहा है। चाहे वह कट्टर धर्मान्ध न रहा हो फिर भी उसके प्रारम्भिक जीवन में उसकी इस्लाम के प्रति निष्ठा अधिक थी, किन्तु राजपूत राजाओं से मिले सहयोग एवं राजपूत कन्याओं से विवाह के परिणामस्वरूप उसमें धार्मिक उदारता का प्रादुर्भाव हुआ। उसने अपनी रानियों को अपनी-अपनी धार्मिक निष्ठाओं एवं विधियों के अनुसार उपासना की अनुमति दी थी। धीरे-धीरे फकीरों एवं साधुओं के सत्संग से भी उसमें एक आध्यात्मिक चेतना का विकास हुआ और उसने युद्धबन्दियों को मुसलमान बनाने और गुलाम बनाने की प्रथा को समाप्त किया। सर्वप्रथम उसने सन् १५६३ में तीर्थयात्रियों पर से कर तथा उसके बाद जजिया कर समाप्त कर दिया, साथ ही गैर मुसलमानों को अपने धार्मिक-स्थलों को निर्मित करवाने की छूट दी और उन्हें उच्च-पदों पर अधिष्ठित किया। ये ऐसे तथ्य हैं जो बताते हैं कि अकबर में जिस धार्मिक उदारता का विकास हुआ था, वह एक क्रमिक विकास था। इस क्रमिक विकास से यह भी प्रतिफलित होता है कि वह परिस्थितियों एवं व्यक्तियों से प्रभावित होता रहा है। अत: जैनाचार्यों के द्वारा भी उसका प्रभावित होना स्वाभाविक है। अत: अकबर के जीवन में जो उदारता एवं अहिंसक

वृत्ति का विकास हुआ उसका बहुत कुछ श्रेय जैनाचार्यों को भी है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

मुगल सम्राटों की धार्मिक नीति, कु० नीना जैन, काशीनाथ सराफ, विजयधर्म सूरि, समाधि मन्दिर, शिवपुरी, १९९१.

मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, अगरचन्द नाहटा व भँवर लाल नाहटा, मणिधारी जिनचन्द्र सूरि अष्टम शताब्दी समारोह समिति, दिल्ली, सन् १९७१.

अकबर दी ग्रेट, वि०ए० स्मिथ, ऑक्सफोर्ड ऐट दी क्लेरण्डन प्रेस, १९१९.

दी रिलीजियस पॉलिसी ऑफ़ दी मुग़ल एम्परर्स, श्री राम शर्मा, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,१९६२.

दी मुग़ल एम्पायर, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, शिवलाल एण्ड कम्पनी, आगरा, १९६७.

सूरीश्वर अने सम्राट, मुनिराज विद्याविजय जी, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, सं० १९७९.

जगद्गुरु हीर, मुमुक्षु भव्यानन्द, विजयश्री ज्ञान मन्दिर, घाणेराव, मारवाड़, संवत् २००८.

जैन शासन दीपावली नो खास अंक, हीरविजय सूरि ऑर दी जैन्स ऐट दी कोर्ट ऑफ अकबर, चिमनलाल डाह्याभाई, हर्षचन्द भूराभाई, बनारस सिटी, संवत् २४३८.

खजुराहो की कला और जैनाचार्यों की समन्वयात्मक एवं सहिष्णु दृष्टि

खजुराहो की मन्दिर एवं मूर्तिकला को जैनों का प्रदेय क्या है? इस चर्चा के पूर्व हमें उस युग की परिस्थितियों का आकलन कर लेना होगा। खजुराहो के मन्दिरों का निर्माणकाल ईस्वी सन् की नवीं शती के उत्तरार्ध से बारहवीं शती के पूर्वार्ध के मध्य है। यह कालावधि एक ओर जैन साहित्य और कला के विकास का स्वर्णयुग है किन्तु दूसरी ओर यह जैनों के अस्तित्व के लिए संकट का काल भी है।

गुप्तकाल के प्रारम्भ से प्रवृत्तिमार्गी ब्राह्मण परम्परा का पुन: अभ्युदय हो रहा था। जन-साधारण तप-त्याग प्रधान नीरस वैराग्यवादी परम्परा से विमुख हो रहा था, उसे एक ऐसे धर्म की तलाश थी जो उसकी मनो-दैहिक एषणाओं की पूर्ति के साथ मुक्ति का कोई मार्ग प्रशस्त कर सके। मनुष्य की इसी आकांक्षा की पूर्ति के लिए हिन्दूधर्म में वैष्णव, शैव, शाक्त और कौल सम्प्रदायों का तथा बौद्ध धर्म में वज्रयान सम्प्रदाय का उदय हुआ। इन्होंने तप-त्याग प्रधान वैराग्यवादी प्रवृत्तियों को नकारा और फलत: जन-साधरण के आकर्षण के केन्द्र बने। निवृत्तिमार्गी श्रमण परम्पराओं के लिए अब अस्तित्व का संकट उपस्थित हो गया था। उनके लिए दो ही विकल्प शेष थे या तो वे तप-त्याग के कठोर निवृत्तिमार्गी आदर्शों से नीचे उतरकर युग की माँग के साथ कोई सामंजस्य स्थापित करें या फिर उनके विरोध में खड़े होकर अपने अस्तित्व को ही नामशेष होने दें।

बौद्धों का हीनयान सम्प्रदाय, जैनों का यापनीय सम्प्रदाय, आजीवक आदि दूसरे कुछ अन्य श्रमण सम्प्रदाय अपने कठोर निवृत्तिमार्गी आदर्शों से समझौता न करने के कारण नामशेष हो गये। बौद्धों का दूसरा वर्ग जो महायान के रास्ते यात्रा करता हुआ वज्रयान के रूप में विकसित हुआ था, यद्यपि युगीन परिस्थितियों से समझौता और समन्वय कर रहा था, किन्तु वह युग के प्रवाह के साथ इतना बह गया कि वह वाम मार्ग में और उसमें उपास्य भेद के अतिरिक्त अन्य कोई भेद नहीं रह गया था। इस कारण एक ओर उसने अपनी स्वतन्त्र पहचान खो दी तथा दूसरी ओर वासना की पूर्ति के पंक में आकण्ठ डूब जाने से जन-साधारण की श्रद्धा से भी वंचित हो गया और अन्तत: अपना अस्तित्व नहीं बचा सका।

जैनाचार्यों ने इन परिस्थितियों में बुद्धिमत्ता से काम लिया, उन्होंने युगीन परिस्थितियों से एक ऐसा सामंजस्य स्थापित किया, जिसके कारण उनकी स्वतन्त्र पहचान भी बनी रही और भारतीय संस्कृति की उस युग की मुख्य धारा से उनका विरोध भी नहीं रहा। उन्होंने अपने वीतरागता एवं निवृत्ति के आदर्श को सुरक्षित रखते हुए भी हिन्दू देव मण्डल के अनेक देवी-देवताओं को, उनकी उपासना पद्धति और कर्मकाण्ड को, यहाँ तक कि तन्त्र को भी अपनी परम्परा के अनुरूप रूपान्तरित करके स्वीकृत कर लिया। मात्र यही नहीं हिन्दू समाज व्यवस्था के वर्णाश्रम सिद्धान्त और उनकी संस्कार पद्धति का भी जैनीकरण करके उन्हें आत्मसात् कर लिया। साथ ही अपनी ओर से सहिष्णुता और सद्भाव का परिचय देकर अपने को नामशेष होने से बचा लिया। हम प्रस्तुत आलेख में खजुराहो के मन्दिर एवं मूर्तिकला के प्रकाश में इन्हीं तथ्यों को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

खजुराहो के हिन्दू और जैन परम्परा के मन्दिरों का निर्माण समकालीन है, यह इस तथ्य का द्योतक है कि दोनों परम्पराओं में किसी सीमा तक सद्भाव और सह-अस्तित्व की भावना थी। किन्तु जैन मन्दिर समूह का हिन्दू मन्दिर समूह से पर्याप्त दूरी पर होना, इस तथ्य का सूचक है कि जैन मन्दिरों के लिए स्थल-चयन में जैनाचार्यों ने बुद्धिमत्ता और दूर-दृष्टि का परिचय दिया ताकि संघर्ष की स्थिति को टाला जा सके। ज्ञातव्य है कि खजुराहो का जैन मन्दिर समूह हिन्दू मन्दिर समूह से लगभग २ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह सत्य है कि मन्दिर निर्माण में दोनों परम्पराओं में एक सात्विक प्रतिस्पर्धा की भावना भी रही तभी तो दोनों परम्पराओं में कला के उत्कृष्ट नमूने साकार हो सके किन्तु जैनाचार्य इस सम्बन्ध में सजग थे कि संघर्ष का कोई अवसर नहीं दिया जाये क्योंकि जहाँ हिन्दू मन्दिरों का निर्माण राज्याश्रय से हो रहा था, वहाँ जैन मन्दिरों का निर्माण वणिक् वर्ग कर रहा था। अत: इतनी सजगता आवश्यक थी कि राजकीय कोष एवं बहुजन समाज के संघर्ष के अवसर अल्पतम हों और यह तभी सम्भव था जब दोनों के निर्माणस्थल पर्याप्त दूरी पर स्थित हों।